17

अनुबन्ध चतुष्टय

प्रस्तावना

किसी भी शास्त्र में प्रवेश से पहले उस के विषय में अच्छी तरह से जानना चाहिए। ग्रन्थ के विषय प्रयोजन आदि के निरूपण के लिए ग्रन्थ के प्रारम्भ में अनुबन्ध चतुष्टय का निरूपण किया जाता है। जिस प्रकार आस्तिक लोग ग्रन्थ के प्रारम्भ में मंगलाचरण करते हैं उसी प्रकार वहाँ अनुबन्धों का भी उल्लेख करना चाहिए। अनुबन्धों से यह ज्ञान होता है यह शास्त्र किस पाठक के लिए उपयुक्त है अर्थात् इस शास्त्र को पढ़ने के लिए कौन सा पाठक योग्य है? शास्त्र का विषय क्या है? शास्त्र के साथ विषय का कौन सा सम्बन्ध है? इस शास्त्र के अध्ययन से क्या लाभ है? फलतः कहा जा सकता है कि अनुबन्ध वाचक होते हैं। शास्त्रों के भेद से अनुबन्धों के वाच्यों में भी परिवर्तन आते हैं। इस पाठ में वेदान्त शास्त्रों के अनुबन्धों का विचार किया जा रहा है।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़कर आप सक्षम होंगे:

- अनुबन्ध चतुष्टय क्या है यह जान पाने में;
- वेदान्त में अनुबन्ध चतुष्ट्य क्या है यह जान पाने में;
- वेदान्त के अधिकारी को जान पाने में;
- वेदान्त के विषय को जान पाने में;
- वेदान्त के प्रयोजन का ज्ञान प्राप्त करने में;

- वेदान्त में कहे गए प्रयोजन के लाभ को प्राप्त करने के लिए अधिकारी बनने के लिए प्रयुक्त होगें;
- मनुष्य जीव का लक्ष्य जान पाने में;
- वेदान्त की व्यावहारिकता को समझनें एवं जीवन जीने में सक्षम होंगे;
- वेदान्त में प्रौढ़ ग्रन्थों में रूचि रखते हुए उच्चतर तत्त्वों की खोज में प्रवृत्त होंगे।

17.1 आलोचित विषय-

शास्त्रों में प्रवेश से पूर्व हमारे मन में कुछ प्रश्न स्वाभाविक रूप से उठते हैं-

1. इस शास्त्र को कौन पढ़ सकता है अर्थात् इस शास्त्र का अधिकारी कौन है?
2. इस शास्त्र में किन विषयों का प्रतिपादन किया गया है?
3. लिखित विषय के साथ पुस्तक का तथा पाठक के साथ विषय का कौन सा सम्बन्ध है?
4. इस शास्त्र के प्रयोजन क्या हैं?

इन प्रश्नों के उत्तर प्राप्त करने हेतु अनुबन्धों का उपस्थापन करते हैं। अधिकारी, विषय, सम्बन्ध तथा प्रयोजन ये चार अनुबन्ध है, इन्हें ही ''अनुबन्ध चतुष्टय'' कहा जाता है। ''अनु स्वज्ञानात् अनन्तर बध्नन्ति शास्त्रे ग्रन्थे वा आसज्जन्ति प्रवर्तयन्ति ये ते अनुबन्धा'' यह अनुबन्ध शब्द की व्युत्पत्ति है जिसका तात्पर्य है कि जो अपने ज्ञान से अन्य को बांध कर ग्रन्थ अथवा शास्त्र में प्रवृत्त करते हैं उन्हें अनुबन्ध कहते हैं। अत एव अनुबन्धों के ज्ञान के बाद ही किसी शास्त्र में पुरूष की प्रवृत्ति सम्भव है। यदि शास्त्र के आदि में अनुबन्धों का उल्लेख नहीं होता है तो ''शास्त्र पढ़ने में पाठक की प्रवृत्ति नहीं होती है। इसीलिए कुमारिलभट्ट ने श्लोकवार्तिक में कहा है-

''ज्ञातार्थं ज्ञातसम्बन्धं श्रोतु श्रोता प्रवर्तते।
ग्रन्थादौ तेन वक्तव्य सम्बन्धः सप्रयोजनः॥'' इति (1/1/17)

श्रोता, ज्ञाता, अर्थ, सम्बन्ध का ज्ञान करके ही शास्त्र में प्रवृत्त होता है। अतः शास्त्र के प्रारम्भ में सम्बन्धादि का उल्लेख अवश्य ही करना चाहिए। यह श्लौकार्थ है। अब प्रश्न उपस्थित होता है कि अधिकारी, विषय, सम्बन्ध तथा प्रयोजन इन अनुबंधों के क्रम में विषय में भी कोई नियम है क्या। तब कहा जाता है कि शास्त्र के ज्ञाता के बिना शास्त्र में प्रवृत्ति सम्भव नहीं है, अतः अधिकारी का उल्लेख सर्वप्रथम करना चाहिए। यद्यपि अधिकारी की उपस्थिति हो गयी है परन्तु विषय ज्ञान से हीन अधिकारी की शास्त्र में प्रवृत्ति सम्भव नहीं है इसलिए दूसरे क्रम में विषय का उल्लेख करना चाहिए। विषय के साथ शास्त्र अथवा व्यक्ति के सम्बन्ध का ज्ञान आवश्यक है इसलिए तृतीय

स्थान में सम्बन्ध का उल्लेख किया जाता है। प्रयोजन की स्थिति हमेशा अन्तिम होती है। इसलिए चौथे नम्बर में प्रयोजन का उल्लेख है।

आस्तिक दर्शन छः हैं- न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, पूर्व मीमांसा तथा उत्तरमीमांसा। उत्तरमीमांसा दर्शन ही वेदान्त कहा जाता है। अब प्रसंगानुसार प्राप्त वेदान्त दर्शन के अधिकारी, विषय, सम्बन्ध तथा प्रयोजन क्या है ये प्रकरण ग्रन्थों के आधार पर विस्तार से वर्णन करते हैं। अब यह समझना चाहिए कि किसी भी शास्त्र के जो अनुबन्ध होते हैं, उस शास्त्र के प्रकरण ग्रन्थों के भी वो ही अनुबन्ध होते हैं। प्रकरण ग्रन्थ का तात्पर्य क्या है, इस विषय में कहा जाता है-

''शास्त्रैकदेशसम्बन्धं शास्त्रकार्यन्तरे स्थितम्।
आहुः प्रकरण नाम ग्रन्थभेऽं विपश्चितः॥''

इति (पराशर उपपुराण 1.3/21-22)

जो ग्रन्थ शास्त्र के एकदेश से सम्बन्धित होता है, तथा उस सम्बन्धित विषय को ही विशेषतया विस्तार करता है, उस ग्रन्थ को विद्वान लोग प्रकरण ग्रन्थ कहते हैं। जैसे वेदान्तसार, विवेकचूड़ामणि, पञ्चदशी इत्यादि ग्रन्थ वेदान्त शास्त्र के प्रकरण ग्रन्थ हैं।

पाठगत प्रश्न 17.1

1. अनुबन्ध क्या है?
2. अनुबन्ध की व्युत्पत्ति क्या है?
3. आस्तिक दर्शन कितने हैं?
4. उत्तरमीमांसा का दूसरा नाम क्या है?
5. वेदान्तशास्त्र के एक प्रकरण ग्रन्थ को बताइए।

अब वेदान्तसार के अनुसार अनुबन्ध चतुष्टय की व्याख्या करते हैं।

17.2 अधिकारी

वेदान्तसार में अधिकारी का स्वरूप कहा गया है-

'अधिकारी तु विधिवद्धीतवेदवेदाङ्गत्वेन अपाततः अधिगताखिलवेदार्थः अस्मिन् जन्मनि जन्मान्तरे वा काम्यनिषिद्धवर्जनपुरः सरं नित्यनैमित्तिकप्रायश्चित्तोपासनानुष्ठानेन निर्गतनिखिलकल्मषतया नितान्तनिर्मल- स्वान्तः साधनचतुष्टयसम्पन्न प्रमाता।'' इति

प्रमाता तु अधिकारी इस प्रकार अन्वय किया गया है। तु शब्द के द्वारा वेदान्ताधिकारी

अन्य अधिकारियों की अपेक्षा विशिष्ट गुणों से सम्पन्न हो यह सिद्ध होता है। प्रमाता ही अधिकारी है। 'शेष सभी पद प्रमाता के विशेषण हैं। प्रमाता शब्द का अर्थ ''ज्ञान प्राप्त करने वाला पुरूष यह है। इस लक्षण का सरलार्थ इस प्रकार है- इस जन्म में तथा अन्य जन्मों में विधि के अनुसार शिक्षा, कल्प, व्याकरण, छन्द, ज्योतिष, निरूक्त इन सभी अंगों के साथ वेद के अध्ययन के द्वारा संशय के विरोधी तथा निश्चयरूपी समग्र वेदार्थ को जानकर, काम्य तथा निषिद्ध कर्मों का त्याग करके, नित्य, नैमित्तिक, प्रायश्चित तथा उपासनारूप कर्मों का अनुष्ठान करके चित्त की निर्मलता का सम्पादन करके नित्य तथा अनित्य वस्तु के ज्ञान को, यहाँ तथा अन्यत्र फल भोग के विराग को, शमदमादिषटक को तथा मुमुक्षुत्व को जिसने प्राप्त कर लिया है वही पुरूष यहाँ अधिकारी है। इस अधिकारी को लक्षण के विषय में अनेक व्याख्याएं हैं। अब वेदान्तसार की विविध व्याख्याओं के अनुसार अधिकारी का लक्षण विस्तार से बताया जा रहा है।

श्रीमान् आपदेव द्वारा विरचित बालबोधिनी नामक वेदान्तसार की अत्यंत प्रसिद्ध व्याख्या है। बालबोधिनीकार के मत में ''प्रमातृशब्दः सदाचारप्रयुक्तब्रह्मणादिपरः'' इति। अर्थात् वेदों के अध्ययनादि सदाचारों से युक्त ब्राह्मण प्रमाता है। परन्तु ऐसा स्वीकार करने पर स्त्री, शूद्र आदि जिनको वेदाध्ययन का अधिकार प्राप्त नहीं है, उनके वेदान्त श्रवण के अधिकार का भी निषेध हो जाता है।

श्री रामतीर्थयति जी द्वारा विरचित विद्वन्मनोरञ्जनी यह वेदान्तसार की अत्यन्त प्रमाणित व्याख्या है। विद्वन्मनोरञजनीकार के मत में ''लौकिकवैदिकव्यवहारेषु अश्रान्तः जीवः एव प्रमाता'' इति। अर्थात् जो पुरूष ज्ञान होने के साथ-साथ लौकिक तथा वैदिक कर्मों का सविधि सम्पादन करता है वह प्रमाता है। प्रमाता शब्द से सभी जीवों का ग्रहण सम्भव नहीं है क्योंकि सभी जीव यथा रूप से सभी कार्यों को सम्पादित नहीं कर पाते हैं। जो व्यक्ति जिस कार्य का अधिकारी नहीं है यदि वह उस कार्य को करता है तो प्रमाद हो सकता है। यदि प्रमाता शब्द से सभी का ग्रहण होता तो जिनका वेदान्त में अधिकार नहीं है उनका भी ग्रहण हो जाएगा। किन्तु वेदान्त अत्यन्त गूढ़ है वहाँ भ्रम हो सकता है। शास्त्र का अभिप्राय सभी नहीं समझ सकते हैं। कहीं अलग ही प्रतिपादन कर देते हैं। अतः वेदान्त में सभी जीव प्रमाता नहीं होते हैं। परन्तु केवल प्रमाता ही अधिकारी नहीं होता है। और भी उपयुक्तगुण उसमें होने चाहिए। प्रमाता किन गुणों से युक्त हो यह क्रम से प्रतिपादित किया है।

अधिकारी के लक्षण में कहा, ''साधनचतुष्टयसम्पन्नः प्रमाता अधिकारी'' इति। चार प्रकार के साधन हैं, उन साधनों से युक्त प्रमाता होता है वही अधिकारी कहलाता है। प्रमाता तभी साधन चतुष्टय से युक्त होता है जब उसका अन्तःकरण अत्यन्त निर्मल होता है। शुद्ध सत्त्व से युक्त ही मुक्ति प्राप्त करते हैं। इसीलिए मुण्डकोपनिषद् में सुना जाता है ''वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थाः संन्यासयोगाद्यतयः शुद्धसत्त्वाः। ते ब्रह्मालोकेषु परान्तकाले परामृताः परिमुच्यन्ति सर्वे'' (3/2/5) यह श्रुति यहाँ प्रमाण है। मन तभी निर्मल होता है जब मल समग्रतया मन से बाहर निकल जाते हैं। मल ही कल्मष कहा जाता है।

मल के कारण से ही मनुष्य नित्य तथा अनित्य वस्तुओं को पहचान नहीं पाता है।, संसार में बंध जाते हैं, उनमें सद्गुणों का विकास नहीं हो पाता है। अत: मल के निष्कासन की अत्यन्त आवश्यकता है। और मल का निष्कासन तभी सम्भव है जब व्यक्ति काम्य तथा निषिद्ध कर्मो का त्याग करते हुए नित्य, नैमित्तिक तथा प्रायश्चित इन तीन कर्मो का अनुष्ठान करे। अत: इसे तप का आचरण करना चाहिए। ऐसे तप से अर्थात् कर्मो के इस प्रकार से आचरण से कल्मष दूर हो जाते हैं। मनुसंहिता में कहा गया है ''तपसा कल्मषं हन्ति, विद्ययामृतमृनुते'' (12/104) यह स्मृति वाक्य यहाँ प्रमाण है। तैत्तिरीयोपनिषद् के भाष्य में भगत्पाद शंकराचार्य जी ने कहा है ''तपसा ब्रह्म विजिज्ञासस्व'' (तै. उ. 3/2/1) इति।

अत: विद्या की उत्पत्ति के लिए कर्मो का आचरण करना चाहिए।'' अनुशस्तीत्यनुशासनम्'' इस शब्दानुशासन की व्युत्पत्ति में तो दोषों की उत्पत्ति हो सकती है। कर्मो के पहले कहे जाने के कारण, केवल ब्रह्मविद्या के अभ्यास से पहले कर्म बताए गए हैं। श्रीमद्भगवद्गीता में भी कहा गया है ''लभन्ते ब्रह्मनिर्वाणमृषय: क्षीणकल्मषा:। छिन्नद्वैधा यतात्मान: सर्वभूतहिते रता:।।'' (5/25) इति।।

इनका आचरण तभी सम्भव है जब प्रमाता ऋक्, यजु, साम तथा अथर्व चारों वेदों का अर्थ सामान्यतया जानता है, वेदों का अर्थज्ञान वेदांगों के साथ ही सम्भव है। व्याकरण, निरूक्त, ज्योतिष, शिक्षा, कल्पसूत्र तथ छन्दशास्त्र ये छ: वेदांग है। छहों वेदांगों के द्वारा ही वेदों के अर्थ का सम्यक् ज्ञान सम्भव है, अन्यथा नहीं है। अत: वेदों के अर्थ के परिज्ञान के लिए छहों अकों के साथ-साथ वेदाध्ययन की आवश्यकता है। अत: लक्षण में ''विधिवदधीतवेदवेदाङ्गत्वेन'' यह कहा है।

अब प्रश्न उठता है कि वेदों में ही वेदान्त अन्तर्निहित है। वेदांग के साथ विधि का अनुसरण करते हुए वेदपाठ होता है तो प्रमाता वेद पाठ काल में ही वेदान्त के तत्त्व को जानता है। इसलिए अलग से वेदान्त शास्त्र के ज्ञान की योग्यता प्राप्त नहीं करनी चाहिए। इस प्रश्न के समाधान के लिए लक्षण में ''आपातत:'' इस पद का प्रयोग होता है। आपातत: इसका अर्थ प्राथमिकता यह है। जो प्राथमिकतया वेदार्थ को जानता है परन्तु वेदान्त तत्व को नहीं जानता है वैसा प्रमाता यहाँ अधिकारी है।

यहाँ अब यह जानना चाहिए कि विधिपूर्वक वेदों का अध्ययन, वेदार्थ का ज्ञान, काम्य तथा निषिद्ध कर्मो का परित्याग, नित्य, नैमित्तिक तथा प्रायश्चित कर्मो का अनुष्ठान इत्यादि कर्म एक तो जन्म में करेंगे जिन्होंने पूर्व जन्म में यह सभी नहीं किया है। परन्तु जिन्होंने ये कर्म पूर्वजन्म में अनुष्ठित कर लिया है उनके लिए इस जन्म में नित्यादि कर्मो की आवश्यकता नहीं है। यहाँ प्रश्न होता है कि हम कैसे जान सकते हैं कि कोई व्यक्ति पूर्व जन्म में नित्यनैमित्तिकादि कर्मो को साध पाये या नहीं? वहाँ कहा जाता है जो द्विजकुल में उत्पन्न नहीं है अपितु शूद्रकुल में उत्पन्न नहीं है, परन्तु उनका मन संसार में लीन नहीं है। वहाँ पूर्व जन्म में सम्पादित नित्यकर्मो के द्वारा मन: शुद्धि ही कारण है। वे लोग इस जन्म में यद्यपि वेदाध्ययन वैदिक कर्मो का अनुष्ठान नहीं कर पाये

टिप्पणी

हैं किन्तु उसके बिना भी वह वेदान्त के अधिकारी हैं। जैसे विदुरादि। अनेक महापुरूष एक ही जन्म में विधिपूर्वक वेदाध्ययन के द्वारा नित्यकर्मों के अनुष्ठान के द्वारा वेदान्त में अधिकारी लाभ के लिए प्रेरित होते हैं। परन्तु साधारण लोग अनेक जन्म में किए गए तपस्या के प्रभाव से अधिकारी होते हैं। भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में कहा है कि-

''प्रयत्नादातमानस्तु योगी संशुद्धिकिल्बिषः।
अनेकजन्मससिद्धस्ततो याति परां गतिम्॥'' इति (6/45)

संशुद्धिकिल्बिषः - अर्थात् जिसके सभी पाप नष्ट हो गए हैं, वैसा व्यक्ति। प्रयत्नात्- अत्यन्त यत्न से। यतमानः अर्थात् प्रवर्तमान, कार्य में लग्न यह अर्थ है। योगवान् पुरूष तो अनेक जन्मों में परिशुद्ध है और उसके बाद पर गति को प्राप्त करता है। यह श्लोकार्थ है।

अर्थात् जो पुरूष विधि का अनुसरण करके शास्त्रोक्त कर्मों का आचरण करता है, उनके सभी प्राप्त नष्ट होते हैं, इस प्रकार अनेक जन्मों में क्रमशः शुद्ध होकर वह मुक्तिरूप परमगति को प्राप्त करता है। यह भावार्थ है। विद्यारण्यमुनि जी ने पञ्चदशी में कहा है -

''कुर्वते कर्म भोगाय कर्म कर्तु च भुञ्यते।
जद्यां कीट इवावर्तादावर्तान्तरमाशु ते॥
व्रजन्तो जन्मनो जन्म लभन्ते नैव निवृत्तिम्॥'' इति (1/30)

जिस प्रकार जल में गिरा हुआ कोई कीड़ा सत्कर्मों के प्रभाव से किसी परमकृपालु पुरूष के द्वारा बाहर निकाल के बचाये जाने के बाद नदी के तट पर पेड़ की छाया में विश्राम करता है, उसी प्रकार भवसागर में पड़ा हुआ जीव अनेक जन्म यापन करके सत्कर्मों के प्रभाव से परमकृपालु गुरू द्वारा संसारसागर से बाहर निकाले जाने से रक्षित होते हैं। अतः आत्मा की शुद्धि के लिए अनेक जन्म आवश्यक हैं यह प्रमाणित होता है। इसलिए लक्षण में ''अस्मिन् जन्मनि जन्मान्ते वा'', यह कहा गया है। इस प्रकार सामान्यतः अधिकारी का लक्षण प्रदर्शित किया, अब उसका विस्तार करना आवश्यक है।

यह सिद्ध हो गया है कि वेदाङ्गों के साथ-साथ वेदाध्ययन करना चाहिए, वह एक ही जन्म में हो जाए या फिर अनेक जन्मों में। विधिवत् अध्ययन का तात्पर्य यह है कि द्विजों का अर्थात् ब्राह्मणों, क्षत्रियों तथा वैश्यों का उपनयन संस्कार करना चाहिए, उसके बाद गुरूकुल जाना चाहिए, वहाँ रहकर ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए वेदों का अङ्गों के साथ अध्ययन ही विधिवत् अध्ययन है। वेदान्त के तत्त्व को जानने के लिए वेदों के अर्थ का समग्र ज्ञान आवश्यक है। वेदार्थ के ज्ञान से मन विशुद्ध होता है तथा विशुद्ध मन की त्याज्य कर्मों में प्रवृत्ति नहीं होती है।

टिप्पणी

पाठगत प्रश्न 17.2

1. प्रमाता शब्द का अर्थ क्या है?
2. बालबोधिनी टीका के लेखक कौन हैं?
3. आपदेव के मत में प्रमाता शब्द का अर्थ क्या है?
4. विद्वन्मनोरञ्जनीकार कौन हैं?
5. साधन कितने प्रकार के हैं?
6. वेदाङ्ग कितने हैं?
7. पञ्चदशी ग्रन्थ का रचयिता कौन है?
8. किनका उपनयन संस्कार होता है?
9. विशुद्ध मन कहाँ प्रवृत्त नहीं होता है?

17.3 काम्य कर्म

त्यज्य कर्म दो प्रकार का है- काम्य कर्म तथा निषिद्ध कर्म। ''फलोद्देश्येन क्रियमागनि कर्माणि काम्यानि'' (विद्वन्मनोरञ्जनी) फल की आकांक्षा से जो कर्म किए जाते हैं, वे कर्म काम्य कर्म कहलाते हैं। जैसे-स्वर्ग प्राप्ति के कामना से किए गए ज्योतिष्टोम यज्ञादि। मरने के बाद स्वर्ग की प्राप्ति हो ऐसे फल को प्राप्त करने के लिए ज्यातिष्टोम याग का अनुष्ठान किया जाता है। स्वर्गरूपी फल की प्राप्ति के लिए ज्योतिष्टोम याग किया जाता है इसलिए ज्योतिष्टोम याग काम्य कर्म है। जो कृतक अर्थात् कर्मजन्य हो वह अनित्य होता है। क्योंकि फल के उपभोग कर लेने के बाद यदि कोई फिर उस फल का उपभोग करना चाहता है तो उसे वह कर्म पुनः करना पड़ता है।

17.4 निषिद्ध कर्म

ब्राह्मण हनन इत्यादि अनिष्ट रूप नरक के साधन रूप निषिद्ध कर्म है। वेदों में जिन कर्मो का निषेध है वे निषिद्ध कर्म हैं। ये कर्म अनिष्ट नरकादि के साधक हैं। जैसे- ''ब्राह्मणों न हन्तव्यः'' अर्थातृ ब्राह्मण को नहीं मारना चाहिए इस प्रकार वेद में ही निर्देश है। यदि कोई भी वेद के निर्देश को ना मानकर ब्राह्मण की हत्या करता है तो वह निषिद्ध कर्म का आचरण करता है। उससे वह पाप का भागी होता है। उसे नरकादि अनिष्ट लोकों की प्राप्ति होती है। इसका फल भी अनित्य ही है।

वेद के तत्त्व के ज्ञान से अज्ञान का नाश होता है वह काम्य कर्मों में तथा निषिद्ध कर्मों में नियुक्त नहीं होता है। अनित्य फल का त्याग करके नित्य फल के लाभ के लिए यत्न करता है। किन कर्मों से नित्यलाभ होता है? साधन चतुष्टय से ही नित्यफल का लाभ मिलता है उससे पूर्व नित्य, नैमित्तिक, प्रायश्चित तथा उपासना इन कर्मों का अनुष्ठान करना चाहिए।

17.5 नित्य कर्म

''नित्यानि अकरणे प्रत्यवाससाधनानि'' अर्थात् जिन कर्मों के आचरण से अत्यधिक पुण्य तो नहीं मिलता है पर न करने से पाप होता है ऐसे कर्म नित्यकर्म है। जैसे- संध्या-वंदन आदि। श्रुति में कहा है कि ''अहरहः सन्ध्यानुपासीत'' इति। प्रतिदिन सन्ध्योपासना करनी चाहिए ऐसा श्रुति का निर्देश है। जो व्यक्ति प्रतिदिन सन्ध्योपासना करता है वह उस कर्म से लाभ तो प्राप्त नहीं करता है परन्तु जो आलस्य के कारण सन्ध्यावन्दन का त्याग करता है वह पापी होता है। मनुसंहिता में भी कहा है-

''अकुर्वन् विहितं कर्म निन्दितं च समाचरन्।
प्रसञ्जन् च इन्द्रियार्थेषु नरः यतनमृच्छति॥ (11/44) इति

सर्वसिद्धान्तसंग्रह में कहा गया है कि-

''मोक्षार्थी न प्रवर्तित तत्र काम्यनिषिद्धकर्मणोः।
नित्यनैमित्तिके कुर्यात् प्रत्यवायनिहागया॥ (11/34,35) इति

तैत्तिरीयोपनिषद् की शिक्षावली में भगवत्पाद शंकराचार्य जी ने कहा है-

'इष्टानिष्टफलानारन्धानां क्षयार्थानि नित्यानि इति चेत्, नः अकरणे प्रत्यवायश्रवणात्। प्रत्यावायशन्दोहि अनिष्टविषयः। नित्याकरणनिमित्तस्य प्रत्यतायस्य दुःखरूपस्य आगामिनः परिहारार्थानि नित्यानीत्यभ्युपगमात् नित्यानीत्वश्युपगमात् न अनारब्धफलवर्त्मक्षयार्धानिक'' इति।

जो शास्त्रों से विहित सन्ध्यावन्दन आदि को छोड़कर शास्त्र द्वारा निषिद्ध ब्राह्मण हननादियों का आचरण करता है, फिर इन्द्रिय भोग्य विषयों में आसक्त होता है वह नरकादि में गिर जाता है। अतः शास्त्र विहित नित्य कर्मों सन्ध्यावन्दनादियों का आचरण प्रतिदिन करना चाहिए।

17.6 नैमित्तिक कर्म

'नैमित्तिकालि उत्रजन्माधनुबन्धीनि जातेष्ययादीनि''। निमित्तमूलक ही नैमित्तिक है। अर्थात् किसी निमित्त के उद्देश्य रूप मान कर शास्त्रोपदेश द्वारा जो कर्म किया जाता है वह नैमित्तिक कर्म है। जैसे जातेष्टि आदि यज्ञ। जातेष्टि याग की विनायक वाक्य इस प्रकार

टिप्पणी

है- ''वैश्वानरं द्वादशकपालं निर्ववेत पुत्रे जाते'' इति। जब पुत्र होता है तब बारह कपालों में पुरारेव्रश रखकर वैश्वानर देव का देना चाहिए। पुत्र प्राप्ति के लिए जातेष्टि याग होता है इसलिए याग नैमित्तिक कर्म है।

17.7 प्रायश्चित कर्म

''प्रायश्चितानि पापक्षय साधनानि चान्द्रायणादीनि'। मनुष्य भ्रम के कारण ही आलस्य करते हैं। लोभादि के वशीभूत होकर पाप करते हैं। विहित कर्मों तथा निषिद्ध कर्मों के अनुष्ठान से ही मनुष्य पाप भागी होते हैं। पर किए गए पाप के लिए अनुशोचन करते हैं इसी जन्म में उन पापों से मुक्त होने का प्रयत्न करते हैं। ऐसे ही मनुष्यों के लिए ही शास्त्र ने प्रायश्चित कर्म का विधान किया गया है। प्रायश्चित शब्द का अर्थ है ''प्राय: तुष्टं चित्तं यत्र तत् प्रायश्चित्तम्'' अर्थात् जहाँ तुष्ट चित्त होता है उसे प्रायश्चित कहते हैं। प्राय: शब्द का अर्थ ''प्रकृष्टम अय:'' अर्थात् लोहे के समान कठोर तप। फलत: जिस व्रतानुष्ठान में कठोर तप के द्वारा चित्त तुष्ट होता है वह प्रायश्चित कहलाता है। जिससे पापों का क्षय होता है। चान्द्रायण एक प्रायश्चित है। चान्द्रायण के विषय में मनु ने कहा है-

''एकैकं ह्रासयेत् पिण्डं कृष्णे शुक्ले चवर्धयेत्।
उपस्पृशन् त्रिवणनेतच्चान्द्रायणं स्मृतम्॥'' इति (11/216)

प्रतिदिन सुबह, शाम तथा दोपहर में नहाना चाहिए। पूर्णिमा के दिन पन्द्रह मुट्ठी के बराबर भोजन करके कृष्णपक्ष की प्रतिपदा तिथि से लेकर चतुर्दशी तिथि तक प्रत्येक दिन एक मुट्ठी भोजन घटना चाहिए। फिर अमावस्या को उपवास करना चाहिए। फिर शुक्लपक्ष की प्रतिपदा तिथि से भोजन करना प्रारम्भ करना चाहिए। प्रतिदिन एक-एक मुट्ठी भोजन बढ़ाते जाना चाहिए इस प्रकार पूर्णिमा को फिर से पन्द्रह मुट्ठी भोजन हो जाएगा। इस तरह एक महिने तक करना चाहिए। इस प्रायश्चित कर्म का नाम चान्द्रायण है। इस प्रकार अन्य और भी प्रायश्चित कर्म है।

इन नित्य, नैमित्तिक तथा प्रायश्चितों का बुद्धि की शुद्धि ही प्रमुख प्रयोजन है। इन कर्मों के अनुष्ठान से बुद्धि की शुद्धि होती है। इसीलिए इन का आचरण करना चाहिए।

17.8 उपासना

सगुण ब्रह्म विषयक मानस व्यापार रूपी शाण्डिल्य विद्या आदि उपासना है। जो पुरूष प्रायश्चित कर्म करता है उसका मन निर्मल होता है। निर्मल मन की एकाग्रता सम्पादित करने के लिए उपासन करना चाहिए। ''उप समीपे आस्यते स्थीयते अनेन इति उपसनम्'' इस व्युत्पत्ति के बल से उपासन का तात्पर्य है जिस कर्म द्वारा उपासक, उपासक के

समीप बैठता है। अर्थात् उपासक का चित्त सदा उपास्य में ही लगा रहता है। उपासना विद्यारूप है। यहाँ विद्या का अर्थ है ''विद्यते लक्ष्यते उपास्ये चित्तस्यैर्य यया क्रियया सा विद्या।'' अर्थात् जिस क्रिया के द्वारा उपास्य गुणसप्ति ब्रह्म में उपासक का चित्त स्थिर होता है वह क्रिया विद्या है। वह विद्या शाण्डिल्यादि महर्षियों द्वारा बतायी गयी है। इसलिए शाण्डिल्य विद्यादि कहा गया। उपासनों से चित्त की एकाग्रता ही सम्पादित होती है। वहाँ ''तमेतमात्मानं वेदानुवचनेन ब्राह्मणा विविदिषन्ति यज्ञने यह श्रुतिवचन तथा ''तपसा कल्मषं हन्ति'' यह स्मृतिवचन प्रमाण है।

इन नित्य, नैमित्तिक, प्रायश्चित तथा उपासना रूप गौण फल तो पितृलोक प्राप्ति तथा सत्य लोक की प्राप्ति है। यहाँ प्रमाण यह श्रुतिवचन है- ''कर्मणा पितृलोकः विद्यया देवलोकः।''

इन नित्य, नैमित्तिक, प्रायश्चित तथा उपासना आदि द्वारा परिशुद्ध मन साधन चतुष्टय के सम्पादन में समर्थ होता है। अतः नित्यादि कर्मों से जिस पुरूष का चित्त निर्मल होता है वह साधन चतुष्टय के सम्पादन में खुद को लगाता है।

पाठगत प्रश्न 17.3

1. त्याज्य कर्म कितने प्रकार के हैं?
2. काम्य कर्म कौन से हैं?
3. स्वर्ग प्राप्ति के लिए कोन सा याग किया जाता है?
4. निषिद्ध कर्म कौन से हैं?
5. निषिद्ध कर्म के अनुष्ठान से क्या होता है?
6. नित्य कर्म कौन से हैं?
7. नैमित्तिक कर्म कौन से हैं?
8. प्रायश्चित कर्म कौन से हैं?
9. उपासना कर्म कौन से हैं?
10. नित्यादि कर्मों का मुख्य फल क्या है?
11. नित्यादिकर्मों का गौण फल क्या है?

साधन चतुष्टय क्या है इस विषय में वेदान्तसारप्रणेता कहते हैं-

''साधनानि नित्यानित्यवस्तुविवेक-इहामुत्रफलभोगविराग-शमादिषटक-सम्पत्तिमुमुक्षुत्वानि'' इति।

टिप्पणी

अर्थात् नित्यानित्यवस्तुविवेक इहामुत्रलभोगविराग, शमादिषट्कसम्पत्ति तथा मुमुक्षुत्व ये चार साधन हैं। अब इनके विवरण क्रमशः देखते हैं-

17.9 नित्यानित्य वस्तुविवेक

जगत् में नित्य तथा अनित्य ये दो प्रकार की वस्तुएँ हैं। उनका विवेक अर्थात् विवेचन, कौन सी वस्तु नित्य है तथा कौन सी वस्तु अनित्य है इनका विचारपूर्वक ज्ञान ही नित्यानित्यवस्तुविवेक है। वेदान्तसारकार के मत में- ''नित्यानित्यवस्तुविवेकस्तावत् ब्रह्मैत नित्यं वस्तु ततोऽन्यदखिलमनित्यामिति विवेचनम्'' इति। ब्रह्म ही नित्य वस्तु है उसके अलावा ये सम्पूर्ण आकाशादि प्रपञ्च् अनित्य वस्तु का विचार पूर्वक ज्ञान। नित्य वस्तु क्या है। क्योंकि तीनों कालों में जिस वस्तु की सत्ता रहती है वह नित्य वस्तु है। जो भूतकाल में भी था, वर्तमान में भी है तथा भविष्य में भी रहेगा वह नित्य वस्तु है। वैसा केवल ब्रह्म ही है। ब्रह्म नित्य वस्तु है यहाँ प्रमाण- ''अजो नित्यः शाश्वतः'' (कठोपनिषद् 1/2/18) ''सत्यं ज्ञानम् अनन्तं ब्रह्म'' (तैत्तिरीये 2/1) इत्यादि श्रुतिवाक्य हैं। ब्रह्म के अलावा बाकी सब कुछ अनित्य है। वो पूर्व में नहीं थी, अभी है, भविष्य में नहीं होगी। अतः वे तीनों कालों में नही रहेंगे। अतः ये अनित्य वस्तुएँ हैं। ब्रह्म से भिन्न सभी के अनित्यत्व के विषय में ''नेह नानास्ति किञ्चन'' (4/4/19), ''अथ यदलयं तन्मर्त्यम्'' (छान्दोगये 7/2/4/9) इत्यादि श्रुतियाँ प्रमाणभूत है। नित्य तथा अनित्य वस्तुओं को अलग-अलग करना ही नित्यानितयवस्तुविवेक है। विवेकचूड़ामणि में भी कहा है-

''ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्येत्येत्वरूपो विनिश्चयः।
सोऽयं नित्यानित्यवस्तुविवेकः समुदाहृतः॥'' इति।

''ब्रह्म सत्यं जगत् मिथ्या'' अर्थात् ब्रह्म सत्य है तथा संसार मिथ्या है इस प्रकार का निश्चय ही नित्यानितयवस्तुविवेक कहा गया है।

जब नित्यअनित्यवस्तुओं का ज्ञान हो जाए तभी दूसरे साधन में (इहामुत्रफलभोगविराग में) यत्न करना चाहिए।

17.10 इहामुत्रफलभोगविराग

इह अर्थात् इस लोक में तथा अमुत्र स्वर्गलोक में कर्मजन्य जो फल प्राप्त होते हैं उनके भोग से विरक्ति अर्थात् आसक्ति का अभाव ही 'इहामुत्रफलभोगविराग है। वेदान्तसार में कहा गया है-

''ऐहिकानां सक्चन्दनवनितादिविषयाभोगानाम् अनितयत्वतत्
आमुष्मिकाणाम् अपि अमृतादिविषयभोगानाम् अनितयतया तेभ्यो विरतिः
इहामुत्रफलभोगविराग'' इति।

''इहलोके भव ऐहिकः'' इस व्युत्पत्ति के प्रभाव से इस लोक में होने वाले को ऐहिक कहते हैं। माला, आभूषण, चन्दन, जीवन साथी, घर, खेत-इत्यादि विषय इस लोक में ही रहते हैं अतः ये ऐहिक हैं। इन विषयों के भोग से ही जीव खुद को सुखी मानते हैं। परन्तु जीव ऐहिक वस्तुओं से जिस सुख का अनुभव करता है वह अनित्य है क्योंकि ये विषय अनित्य है और अनित्य वस्तुओं से उत्पन्न सुख अनित्य होता है। इसी प्रकार स्वर्गादि लोकों के अमृतादि विषय भोग भी अनित्य हैं। वहाँ प्रमाण - ''तद्यथेह कर्मजितो लोकः क्षीयते एवम् अत्र अमुत्र पुण्यजितो लोकः क्षीयते'' (छा. 1/8/16) इत्यादि श्रुतियाँ हैं। अर्थात् कर्मों द्वारा अर्जित पृथिवी लोक भोग द्वारा क्षीण होते हैं, उसी प्रकार पुण्यों द्वारा अर्जित स्वर्गलोक भी भोग से क्षीण होता है। ''क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति'' यह गीतावचन भी प्रमाणभूत है। अतः लौकिक तथा स्वर्गीय दोनों प्रकार के सुख अनित्य है। क्योंकि वे अनित्य हैं अतः उनसे पूर्णतया विमुखता ही इहामुत्रफलभोगविराग है। विवेकचूड़ामणि में भी कहा है-

''तद्वैराग्यं जुगुप्सा या दर्शनश्रवणादिभिः।
देहादिब्रह्मपर्यन्ते ह्यनित्ये भोगवस्तुनि॥'' (21)

अपनी देह से प्रारम्भ करके ब्रह्मलोक पर्यन्त भोग वस्तुओं के दर्शन श्रवणादि में स्वाभाविक रूप से घृणा का बोध ही वैराग्य है। अर्थात् मनुष्य का शरीर अनित्य है यह सभी जानते हैं। पुण्य कर्मों से पुरूष ब्रह्मलोक की प्राप्ति करता है, यद्यपि वहाँ वह दीर्घकाल तक निवास करता है तथापि वहाँ उसका नित्य निवास सम्भव नहीं है। ब्रह्मलोक में प्राप्त सुखों की समाप्ति होती ही है। कुछ वस्तुएँ अनित्य हैं यह ज्ञान दर्शन मात्र से हो जाता है, परन्तु कुछ वस्तुओं के अनित्यत्व का ज्ञान आप्त पुरूष के वचनों को सुनने से होता है। दोनों प्रकार की भोग्य वस्तुओं की अनित्यता को जानकर उनके संग्रहण में घृणा का भाव ही वैराग्य कहलाता है।

17.11 शमादिषट्कसम्पत्ति

अधिकारी जब द्वितीय साधन से सम्पन्न हो जाता है तब तीसरे साधन का मार्ग खुल जाता है। तृतीय साधन है- शम, दम, उपरति, तितिक्षा, समाधान और श्रद्धा की प्राप्ति।

शम- ''शमस्तावत् श्रवणादिव्यतिरिक्तविषयेभ्यः मनसः निग्रहः'' यह वाक्य वेदान्तसार में कहा है। वस्तुतः मन का निग्रह ही शम है। वेदान्त के तत्त्व का श्रवण, मनन तथा निदिध्यासन से ही तत्त्वज्ञान की प्राप्ति होती है। जिस क्रियाविशेष से आत्मा के विषय श्रवणादियों से बलपूर्वक मन का निग्रह किया जाता है वह शम है। जीव का चित्त अत्यधिक चञ्चल होता है। वह एक ही विषय में अधिक समय तक नहीं लगता है। भूखे की भोजन के प्रति जिस प्रकार की अभिरूचि होती वैसी ही वैराग्य युक्त पुरूष की तत्त्व ज्ञान से अभिरूचि होती है। ऐसा होने पर भी पूर्व संस्कार के कारण व्यक्ति

का मन विक्षिप्त हो जाता है, उस अवस्था में जिस वृत्ति विशेष के द्वारा पार्थिव सुख अनित्य है अतः इनके परिणाम दुख जनक है। ऐसा बोध कराकर बलपूर्वक विषयों से मन दूर खींचा जाता है वह वृत्ति शम है। विवेकचूड़ामणि में भी कहा है-

''विरज्य विषयव्रातादोषदृष्टचा मुहुर्मुहुः।
स्वलक्ष्ये नियतावस्था दृष्टचा मुहुर्मुहुः॥ इति (22)

मुमुमेहु - प्रतिक्षण, दोष दृष्टचा-दोषों क दर्शन द्वारा, विषयव्रतात्-विषयों के समूह से, विरज्य-वैराग्य प्राप्ति के द्वारा, मन का स्वलक्ष्ये-ब्रह्म तत्त्व ज्ञान में, नियतावस्था-निश्चित रूप में स्थिति शम कहलाता है। यह उपर्युक्त श्लोक का तात्पर्य है।

दम- ''दमो बाह्येन्द्रियाणां तद्व्यतिरिक्तविषयेभ्यो निवर्तनम्'' यह वेदान्तसार में कहा गया है। बाह्य इन्द्रियों अर्थात् चक्षु, कर्ण, नासिका, जिह्वा तथा त्वचा इन ज्ञानेन्द्रियों का उनके विषयों से आकर्षण। अर्थात् चक्षु का रूप से, कर्ण का शब्द से, नासिका का गन्ध से, जिह्वा का रस से तथा त्वक् का स्पर्श से जिस वृत्ति विशेष द्वारा आकर्षण किया जाता है वह दम है। वस्तुतः बाह्येन्द्रियों का निग्रह ही दम कहलाता है। प्रथम मन का निग्रह करना चाहिए फिर बाह्येन्द्रियों का। इसीलिए पहले शम बताया गया और फिर दम का निर्देश किया गया। यदि मन वशीभूत होगा तभी चक्षु आदि इन्द्रियों का निग्रह सम्भव है। क्योंकि मन के निर्देश से ही इन्द्रियाँ अपने विषयों की तरफ भागती हैं। यदि कोई पुरूष किसी विषय में मन का नियन्त्रण कर लेता है तो उसके सम्मुख सुन्दर रूप होते हुए भी वह नहीं देखता है, अत्यन्त मधुर संगीत होते हुए भी नहीं सुनता। अतः मन का निग्रह होने पर स्वयंमेव बहिरिन्द्रियों का भी निग्रह हो जाता है। परन्तु संस्कार के कारण विक्षिप्त हो जाता है। इसलिए प्रयास करना चाहिए। विवेकचूड़ामणि में दम के विषय में कहा है कि-

''विषयेभ्य परावर्त्य स्थापनं स्वस्वगोलके।
उभयेषामन्द्रियाणां स दमः परिकीर्तितः॥'' इति (23)

अर्थात् दोनों प्रकार की इन्द्रियों को (ज्ञानेन्द्रियों तथा कर्मेन्द्रियों का) उनके अपने-अपने विषयों से विमुख करके खुद के स्थान में ही स्थिर करना ही दम कहा गया। शम तथा दम से युक्त पुरूष ही स्थितप्रज्ञ है यह भगवान श्रीकृष्ण गीता में कहा है -

''यदा संहरते चायं कूर्मोऽन्नानवि सर्वशः।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता॥'' इति (2/58)

'यदा अयं कूर्म अङ्गानि इव सर्वशः इन्द्रियाणि इन्द्रियार्थेभ्य संहरते तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता भवति' ये अन्वय है। अर्थात् इन्द्रियाँ सर्वदा शब्दादि विषयों में प्रवृत्त होती हैं। कछुआ जिस प्रकार भय के कारण अपने अंगों को छुपा लेता है उसी प्रकार यह ज्ञाननिष्ठा में प्रवृत्त व्यक्ति अपनी सभी इन्द्रियों को शब्दादि विषयों से छुपा लेता है उसकी बुद्धि प्रतिष्ठित होती है तथा वह स्थितप्रज्ञ होता है।

उपरति- वेदान्तसार में उपरति के दो लक्षण कहे हैं- ''निवर्तितानाम् एतेषा तद्व्यतिरिक्तविषयेभ्य: उपरमणम् उपरति:'' अथवा ''विहितानां कर्मणां विधिना परित्याग:' इति।

मन तथा बाह्य इन्द्रियों के निग्रह मात्र से तत्त्वज्ञान का मार्ग बाधारहित नहीं होता है। पूर्व वासना के प्रभाव से वे पुन: चंचल हो जाते हैं। अत: निग्रह की गई बाह्येन्द्रियों तथा मन का अनेक विषयों से बार-बार दोष दिखाकर निवृत्ति कराना ही उपरति है। अथवा शास्त्रों में वर्णित नित्य, नैमित्तिक तथा प्रायश्चितों का विधिपूर्वक परित्याग ही उपरति है। विवेकचूड़ामणि में कहा है - ''बाह्यानालम्बनं वृत्तेरेषोपरतिरूत्तमा।'' इति। अर्थात् मन की विषय प्रकाश शक्ति का बाह्य आलम्बन के अपरिणत हो जाना ही उत्तम उपरति है।

तितिक्षा - ''तितिक्षा शीतोष्णादि द्वन्द्वसहिष्णुता'' ऐसा कहा गया है। अर्थात सर्दी गर्मी आदि विपरीत विषयों तथा उनसे उत्पन्न सुख तथा दुख को सहन करना। सभी जीव सुख से आनन्द का अनुभव करते हैं। अत: प्रमाद नहीं करते हैं। परन्तु सभी दु:ख को सहन नहीं कर सकते हैं। बहुत सारे लोग दु:ख के कारण प्रमाद करते हैं। परन्तु जो तितिक्षा का अभ्यास करते हैं उसके लिए सुख तथा दुख दोनों ही समान है। वह सुख से अत्यधिक आनन्दित तथा दु:ख से अत्यधिक दु:खी नहीं होता है। वह प्रमाद से रहित धैर्यवान् होकर साधना में विचलित नहीं होता है। विवेकचूड़ामणि में कहा है-

''सहनं सर्वसुखानामप्रतीकारपूर्वकम्।
चिन्ताविलापरहितं सा तितिक्षा निगयते॥'' इति।

सभी प्रकार के दु:खों को चिन्ता तथा विलय से रहित होकर प्रतिकार न करते हुए सहन करना ही तितिक्षा कहलाता है।

वस्तुत: शम, दम तथा उपरति के द्वारा बाह्य विषयों से निवृत्ति है परन्तु तितिक्षा से चित्त का अन्तर्विषयों से निवृत्ति होती थी।

समाधान- ''निगृहीतस्य मनस: श्रवणादो तदनुगुणविषये च समाधि: समाधानाम्'' अर्थात् विषयों से दूर हो चुके चित्त का आत्मा विषयक श्रवण, मनन तथा निदिध्यासन में तथा तदनुगुण गुरूसेवा आदि में लगाना ही समाधान है। इस अवस्था में ऐसा कुछ भी नहीं करना चाहिए जिसमें आत्मा विषयक स्मृति की धारा में विच्छेद होता हो। आत्म विषयक प्रत्यय के प्रवाह का उत्पादन ही समाधि है, वही समाधान है। विवेकचूड़ामणि में भी कहा है-

''सम्यगास्थापनं बुद्धेः शुद्धेः ब्रह्माणि सर्वथा।
तत्समाधानमित्युक्तं न तु चित्तस्य त्वालनम्॥'' इति।

अर्थात् ब्रह्मविषयक तत्त्व ज्ञान में चित्त का यथार्थ रूप से स्थितीकरण ही समाधान है ऐसा कहा जा चुका है। किन्तु चित्त का लालन कुतूहल पूर्वक वेदान्त तत्त्व के आलोचन

टिप्पणी

से मन को तृप्ति का लाभ न होना ही समाधान है। समाधि के बिना आत्म साक्षात्कार नहीं होता है।

श्रद्धा- केवल श्रवणादियों द्वारा तत्त्व का साक्षात्कार नहीं होता है। श्रवणादि श्रद्धापूर्वक ही करना चाहिए। श्रद्धा क्या है इस विषय में कहा है कि- ''गुरूपदिष्टवेदान्तवाक्येषु विश्वासः श्रद्धा'' इति। अर्थात् गुरू के वचनों तथा गुरू द्वारा उपदिष्ट शास्त्रवचनों में दृढ़ विश्वास ही श्रद्धा है। आत्म तत्त्व के जिज्ञासु के लिए श्रद्धा मेरूदण्ड है। श्रद्धा नहीं हो तो सैंकड़ों बार उपदेश करने के बाद भी अर्थ का अवधारण नहीं होता है। अतः आत्मा की उपलब्धि होती है तो वह सभी द्वारा श्रद्धा कही जाती है। इस प्रकार शमदमादिषट्कसम्पत्ति ग्रहण की जाती है।

पाठगत प्रश्न 17.4

1. नित्य अनित्य वस्तुविवेक क्या है?
2. विराग क्या है?
3. स्वर्ग का सुख भी अनित्य है कौन सी श्रुति इस बात में प्रमाणभूत है?
4. शम क्या है?
5. दम क्या है?
6. उपरति क्या है?
7. तितिक्षा क्या है?
8. समाधान क्या है?
9. श्रद्धा क्या है?

17.12 मुमुक्षुत्व

मुमुक्षुत्व का अर्थ है मोक्ष में इच्छा। आत्म ज्ञान की प्राप्ति के लिए यही प्रधान साधन है। यदि पुरूष की मोक्ष प्राप्ति की इच्छा नहीं होती है तो वह मोक्ष के उपायों को नहीं ढूँढता है। इसलिए आत्मा का दर्शन नहीं करता है। आत्मदर्शन मोक्ष का मार्ग है तथा वेदान्त तत्त्व श्रवण-मनन तथा निदिध्यासन आत्मदर्शन में कारण है यह भी जान नहीं सकता है। अतः वेदान्त में उसकी प्रवृत्ति ही नहीं होती है। इसलिए वेदान्त द्वारा वेद्य आत्मा का ज्ञान भी उसे नहीं होता है। अतः अधिकारी की मोक्ष विषय में इच्छा अवश्य ही होनी चाहिए। विवेकचूड़ामणि में शंकराचार्य जी ने कहा है-

''अहंकारादिदेहान्तान् बन्धानज्ञानकल्पितान्।
स्वस्वरूपावबोधेन मोक्तुमिच्छा मुमुक्षुता॥'' इति।

अर्थात् अहंकार से लेकर स्थूल देह तक अज्ञान से उत्पन्न बन्धसमूहों के स्वरूप को जानकर आत्मज्ञान द्वारा मुक्त होने की इच्छा ही मुमुक्षुता है।

इस प्रकार साधन चतुष्टय का निरूपण किया। जब तक नित्य तथा अनित्य वस्तुओं का विवेक नहीं होता है तब तक अनित्य वस्तुओं में वैराग्य की उत्पत्ति नहीं होती है। वैराग्य के बिना शमादि का आचरण सम्भव नहीं है। शमादि के अभाव में मोक्ष विषयक इच्छा भी सम्भव नहीं होती है। मोक्ष विषयक इच्छा के अभाव में ब्रह्म जिज्ञासा नहीं होती। इसलिए प्रथम नित्यानित्य वस्तुविवेक फिर इहामुत्रफलभोगविराग फिर शमादिषट्कसम्पत्ति फिर मुमुक्षत्व इनका क्रम से उल्लेख करना चाहिए।

इस प्रकार सभी गुणों से युक्त प्रमाता वेदान्त विद्या का अधिकारी होता है। यहाँ श्रुति का प्रमाण भी मिलता है- ''शान्तो दान्त उपरतिस्तितिक्षुः समाहितो भूत्वाऽत्मन्येवात्मानं पश्यति'' इति। अर्थात् जिसका मन शान्त है इन्द्रियाँ चञ्चल नहीं है, जो संन्यासदीक्षा को प्राप्त कर चुका है, जो सुखदुःखादियों में समान रूप से बैठता है व समाहित होकर एकाग्रभाव को प्राप्त करके आत्मा में ही आत्मा का दर्शन करता है। उपदेशसहस्री का यह वाक्य इस श्रुति का समर्थन करता है-

''प्रशान्तचित्ताय जितेन्द्रियाय च प्रहीणदोषाय यथोक्तकारिणे।
गुणन्विताय अनुगताय सर्वदा प्रदेयमेतत् सततं मुमुक्षवे॥'' (324, 16/12)

अर्थात् जिसका चित्त शान्त है उसे, जिसकी इन्द्रियाँ चंचल नहीं होती है जो दोष मुक्त होने के लिए त्याज्य कर्मों का त्याग करके नित्यादि कर्मों का अनुष्ठान करता है ऐसे, विवेक वैराग्य आदि गुणों से विशिष्ट तथा सर्वदा जो गुरू वचनों तथा शास्त्र वचनों का अनुपालन करते हैं तथा आचार्य के पीछे ही बैठते हैं ऐसे मुमुक्षु को ब्रह्मविद्या प्रदान करनी चाहिए।

ऐसा अधिकारी जन्म मरण रूप संसार अग्नि से सन्तप्त होकर दीप्तशिरा जलराशि के समान उपहार लेकर श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरू के समीप जाता है तथा उसका अनुसरण करता है। ''समित्पाणिः ब्रह्मनिष्ठम्'' इत्यादि श्रुतियाँ यहाँ प्रमाणभूत है।

पाठगत प्रश्न 17.5

1. मुमुक्षत्व क्या है?
2. विवेकचूड़ामणि का कर्ता कौन है?
3. शमादि के अभाव में क्या नहीं होता है?

इस प्रकार अधिकारी के स्वरूप का निरूपण करके अब विषय का प्रतिपादन करते हैं-

17.13 विषय

वेदान्त शास्त्र में विषय का निरूपण करते समय वेदान्तसार में कहा है- ''जीवब्रह्मैक्यं शुद्धचैतन्यं प्रमेयम्, तत्रैव वेदान्तानां तात्पर्यात्'' इति। यह वेदान्त शास्त्र जीव तथा ब्रह्म के ऐक्य का प्रतिपादन करता है। जीव अल्पज्ञ है तथा ब्रह्म सर्वज्ञ है, उन दोनों जीव तथा ब्रह्म के शुद्धचैतन्य रूप ऐक्य का प्रतिपादन करता है। यहाँ प्रश्न होता है कि वेदान्तशास्त्र जीव और ब्रह्मा का ऐक्य ही प्रतिपादन क्यों करता है? ग्रन्थकर्ता कहते हैं कि- ''तत्रैव वेदान्तानां तात्पर्यात्'' इति। अर्थात् सभी वेदान्त वाक्य उपनिषदों के वाक्य ''अयमात्मा ब्रह्म'', ''तत्त्वमसि'', ''अहं ब्रह्मास्मि'', ''प्रज्ञानं ब्रह्म'' इत्यादि वाक्य जीव और ब्रह्म के ऐक्य का ही प्रतिपादन करते हैं। शुद्ध चैतन्य का प्रतिपादन ही इन सभी वाक्यों का लक्ष्य है। अतः यह शास्त्र भी उसी का प्रतिपादन करता है। फिर प्रश्न होता है कि वेदान्तवाक्यों से जीव तथा ब्रह्म का कैसा ऐक्य विवक्षित है? जलदुग्ध की तरह गौण अथवा घटाकाशपटाकाश की तरह मुख्य? जल तथा दुग्ध दोनों अलग-अलग है परन्तु दोनों को मिला लेने पर उनको अलग-अलग करना साधारणतया सम्भव नहीं है। उनका ऐक्य अनुभूत होता है। वेदान्त वाक्यों द्वारा ऐसा ही ऐक्य विवक्षित है क्या? इस प्रश्न के उठने पर कहते हैं- ''शुद्धचैतन्यम्' इति। अर्थात् जलदुग्ध के समान गौण ऐक्य विवक्षित नहीं है। यहाँ ऐक्य शब्द का अर्थ अभेद है। घट का मध्यवर्ती जो आकाश है वह महाकाश का ही अंश है, परन्तु घट रूप आवरण के कारण अलग प्रतीत होता है। जैसे घट का मध्यवर्ती आकाश घट के नाश हो जाने पर महाकाश के साथ मिल जाता है उसी प्रकार अज्ञान के नाश होने पर जीव चैतन्य का शुद्धचैतन्यरूप से ब्रह्मचैतन्य के साथ एकात्मभाव को प्राप्त करता है। ऐसा मुख्य ऐक्य ही वेदान्त का प्रतिपाद्य विषय है। आत्मोपनिषद् में कहा गया है -

''घटे नष्ट यथा व्योम व्योमैव भवति स्वयम्।
तथोपाधिविलये ब्रह्मैव ब्रह्मवित् स्वयम्॥'' इति (1/22)

अर्थात् घट के नाश हो जाने पर घटाकाश स्वयमेव महाकाश बन जाता है, उसी प्रकार अज्ञान के नाश हो जाने पर ब्रह्मवित् जीवात्मा स्वयं पर ब्रह्म बन जाता है। वस्तुतः जीव और ब्रह्म पृथक-पृथक नहीं है। उनमें पृथकता अज्ञान के कारण उत्पन्न होती है। ऐसा अज्ञान तभी तक रहता है जब तक स्वरूप ज्ञान के लिए यत्न नहीं होता है। अतः अज्ञान का नाश करने जीव तथा ब्रह्म के शुद्ध चैतन्य स्वरूप का प्रतिपादन करने के लिए ही ऐसा विषय स्वीकार किया है।

17.14 सम्बन्ध

अधिकारी का और विषय का प्रतिपादन करके अब तृतीय सम्बन्ध का प्रतिपादन करते हैं- ''सम्बन्धस्तु तदैक्यप्रमेयस्य तत्प्रतिपादकोपनिषत्प्रमाणस्य च बोध्यबोधकभावः'' इति। अर्थात् जीव तथा ब्रह्म का अभेद, जीव और ब्रह्म के ऐक्य प्रमेय का, ऐक्य ज्ञेय का, तत्प्रतिपादक उपनिषत्प्रमाण का तथा बोध्यबोधकभाव सम्बन्ध है। शास्त्र के साथ तथा ग्रन्थ के साथ विषय का सर्वदा बोध्यबोधक भाव सम्बन्ध ही होता है। शास्त्र अथवा ग्रन्थ बोधक है तथा ब्रह्म बोध्य विषय है। बोधक शब्द का अर्थ बोध का जनक है अर्थात् जो बोध बोध को उत्पन्न करता है। ग्रन्थ प्रतिपाद्य विषय शास्त्र अथवा ग्रन्थ से उत्पन्न बोध का विषय है अतः वह बोध्य कहा जाता है। शास्त्र तथा ग्रन्थ विषय बोध का जनक है अतः वह बोधक कहा जाता है। विषय के साथ शास्त्र अथवा ग्रन्थ का ऐसा ही बोध्य बोधक भाव सम्बन्ध सम्भव है। ऐसे ही सम्बन्ध का ज्ञान होता है तो विषय के ज्ञान का इच्छुक उस बोधक शास्त्र अथवा ग्रन्थ में प्रवृत्त होता है।

17.15 प्रयोजनम्

अन्तिम अनुबन्ध प्रयोजन है। ''प्रयोजनमनुद्दिश्य न मन्दोऽपि प्रवर्तते।'' अर्थात् प्रयोजन को जाने बिना मन्दबुद्धि व्यक्ति भी किसी भी कार्य में प्रवृत्त नहीं होता है, तो बुद्धिमानों के विषय में क्या कहें, वो तो अवश्य ही प्रवृत्त नहीं होते हैं। 'यम् अर्थम् अधिकृत्य प्रवर्तते तत् प्रयोजनम्'' यह गौतमीय सूत्र भी कहता है कि जिस वस्तु को प्राप्त करने के लिए व्यक्ति किसी भी कार्य में प्रवृत्त होता है उसकी प्राप्ति ही उस कार्य का प्रयोजन है। कुमारिल भट्ट ने भी कहा है-

''सर्वस्यैव तु शास्त्रस्य कर्मणो वापि कस्यचित्।
यावत् प्रयोजनं नोक्तं तावत् तत् केन गृह्यते॥'' इति।

अतः शास्त्रों या ग्रन्थों के प्रारम्भ में शास्त्र अथवा ग्रन्थ का प्रयोजन कहा जाता है। इसलिए अनुबन्ध चतुष्टय में प्रयोजन का अन्तर्भाव होता है। वेदान्त शास्त्र का क्या प्रयोजन है यहाँ कहते हैं-

''प्रयोजनं तु तदैक्यप्रमेयगताज्ञाननिवृत्तिः स्वस्वरूपानन्दावाप्तिश्च।'' इति।

वहाँ प्रमाण दिखाते हैं- ''तरति शोकमात्मवित्'' इस श्रुतिवाक्य द्वारा तथा ''ब्रह्मविद ब्रह्मैव भवति'' इस स्मृति वाक्य द्वारा मनुष्य अनादिकाल से ही ब्रह्म के साथ आत्मा के ऐक्य के विषय में अज्ञानग्रस्त है। स्वरूपानन्द को भूलकर अन्य अनित्य वस्तुओं में आनन्द की खोज में लगा हुआ है। यदि किसी भी प्रकार यह जान ले कि वह सामान्य नहीं है, साक्षात् ब्रह्म ही है, आनन्द प्राप्ति के लिए अन्यत्र कहीं नहीं जाना है अपना स्वरूप ही आनन्ददायक है, किन्तु यह सब वेदान्त शास्त्र के अध्ययन से जान सकता है। तब

टिप्पणी

वह ब्रह्म के साथ अपनी अज्ञान से निवृत्ति के लिए तथा अपने स्वरूप के आनन्द के अनुभव लिए निर्बद्ध करता है। इसलिए वह वेदान्त शास्त्र के अध्ययन में प्रवृत्त होता है। यही वेदान्त शास्त्र का प्रयोजन है जो ग्रन्थाकार ने कहा है- उस ऐक्य प्रमेयगत ज्ञान की निवृत्ति ब्रह्म के साथ आत्मा के ऐक्य विषयक ज्ञान की निवृत्ति तथा अपने स्वरूप के आनन्द की प्राप्ति स्वरूप ज्ञान में जो आनन्द है उसकी प्राप्ति। यह विचार करना चाहिए कि ऐक्यगत अज्ञान से निवृत्ति जब होगी तभी अपने स्वरूप में आनन्द की प्राप्ति होती है।

पाठगत प्रश्न 17.6

1. वेदान्त शास्त्र का विषय क्या है?
2. वेदान्तों का तात्पर्य कहाँ है?
3. जीव ब्रह्मैक्य यहाँ ऐक्य का शब्दार्थ क्या है?
4. शास्त्र के साथ विषय का क्या सम्बन्ध है?
5. बोधक शब्द का अर्थ क्या है?
6. वेदान्तशास्त्र का प्रयोजन क्या है?
7. स्वरूपानन्द की प्राप्ति कब होती है?

पाठसार

शास्त्र के ज्ञान से पहले शास्त्र विषयक अनुबन्धों का ज्ञान आवश्यक है। अनुबन्धचतुष्टय में प्रमाता ही अधिकारी होता है। प्रमाता वेदों का क्रम से अर्थ को जाने। त्याज्य कर्मों का त्याग करे। नित्य तथा नैमित्तिक कर्मों का आचरण करें। उससे मन शुद्ध होता है। मन के शुद्ध होने से साधनचतुष्टय के सम्पादन का अवकाश प्राप्त होता है। पहले नित्य तथा अनित्य वस्तुओं का विवेक करना चाहिए। उससे वैराग्य उत्पन्न होता है। उससे शमादि में रूचि बढ़ती है। उससे मोक्ष विषयक इच्छा होती है। जिसकी मोक्ष विषयक इच्छा है वही वेदान्त में अधिकारी है।

विषय तो जीव तथा ब्रह्म के ऐक्य का प्रतिपादन करता है। यहाँ नीर क्षीरवत् गोण ऐक्य नहीं कहा गया है, अपितु घटाकाश महाकाश के समान मुख्य ऐक्य बताया गया है।

सम्बन्ध बोध्यबोधकभावरूप है। यहाँ बोध्य ब्रह्म है, शास्त्र अथवा ग्रन्थ बोधक है। प्रयोजन तो जीव तथा ब्रह्म के ऐक्यगत ज्ञान की निवृत्ति तथा स्वरूपानन्द की प्राप्ति है। इस ग्रन्थ को पढ़ने से हमारे जीव तथा ब्रह्म के विषय में भ्रम है उसका नाश होता है।

जीव तथा ब्रह्म का ऐक्य अनुभूत होता है, उसके स्वस्वरूपानन्द ज्ञान से आनन्द प्राप्त होता है।

इस प्रकार इस पाठ में वेदान्तसार ग्रन्थ के अनुसार वेदान्त के अनुबन्धचतुष्टय का संक्षिप्त तथा विवरण प्रस्तुत किया।

योग्यता वर्धनम् -

अधिकारी का निरूपण करते समय वेदान्त का सार कहा। वेदान्त का यथायोग्य अधिकारी हो ऐसी चेष्टा करनी चाहिए।

अन्य शास्त्रों के अनुबन्धों के अन्वेषण से इस पाठ की युक्तता बढ़ाए।

पाठान्त प्रश्न

1. वेदान्त शास्त्र का अधिकारी कौन है?
2. त्याज्य कर्म कैसे हैं? विस्तृत विवरण प्रस्तुत कीजिए।
3. नित्यादियों का वर्णन कीजिए।
4. साधनचतुष्टय का वर्णन कीजिए।
5. शमादिषट्कसम्पत्ति किसलिए प्राप्त करनी चाहिए?
6. वेदान्त के विषय का प्रतिपादन कीजिए।
7. वेदान्त का प्रयोजन क्या है?

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

उत्तर - 17.1

1. अधिकारी, विषय, सम्बन्ध तथा प्रयोजन ये चार अनुबन्ध हैं।
2. ''अनु स्वज्ञानात्, अनन्तरं बध्नन्ति शास्त्रे ग्रन्थे वा आसज्जयन्ति प्रवर्तयन्ति येते अनुबन्धा:'' यह अनुबन्ध शब्द की व्युत्पत्ति है।
3. आस्तिक दर्शन छ: प्रकार के हैं - न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, पूर्व मीमांसा तथा उत्तरमीमांसा।
4. वेदान्त ही उत्तरमीमांसा का दूसरा नाम है।
5. ''वेदान्तसार'' यह वेदान्त शास्त्र का प्रकरण ग्रन्थ है।

उत्तर - 17.2

1. प्रमाता शब्द का अर्थ ''ज्ञान प्राप्त करने वाला पुरूष'' है।
2. बालबोधिनी टीका कर्ता आपदेव हैं।
3. आपदेव के मत में प्रमातृ शब्द सदाचार प्रयुक्त ब्रह्मणादि पर है।
4. विद्वन्मनोरञ्जनीकार श्रीरामतीर्थयति है।
5. साधन चार प्रकार के हैं- नित्यानितयवस्तुविवेक, इहामुत्रफलभोगविराग, शमादिषट्कसम्पत्ति तथा मुमुक्षुत्व।
6. व्याकरण, निरूक्त, ज्योतिष, शिक्षा, कल्पसूत्र और छन्दशास्त्र ये छः वेदांग हैं।
7. पञ्चदशीग्रन्थ के रचयिता विद्यारण्य मुनि हैं।
8. त्रैवर्णिकों का (ब्राह्मणों, क्षत्रियों तथा वैश्यों का) उपनयन संस्कार होता है।
9. विशुद्ध मन त्याज्य कर्म में नियुक्त नहीं होता है।

उत्तर - 17.3

1. त्याज्य कर्म दो प्रकार के हैं- काम्यकर्म और निषिद्धकर्म।
2. फल प्राप्ति की इच्छा से किए जाने वाले कर्म काम्य हैं।
3. स्वर्ग प्राप्ति के लिए ज्योतिष्टोमयज्ञ का अनुष्ठान किया जाता है।
4. नरकादि अनिष्टों के साधन ब्राह्मण हनन इत्यादि निषिद्ध कर्म हैं।
5. निषिद्ध कर्मों के अनुष्ठान से बरकादि अनिष्टों का साधन होता है।
6. जिनके न करने से दोष लगता है ऐसे कर्म नित्य कर्म है। जैसे सन्ध्यावन्दन आदि।
7. पुत्रजन्मादि के लिए अनुबन्ध रूप जातेष्टि आदि निमित्त कर्म हैं।
8. पाप क्षय के कारक चान्द्राणादि प्रायश्चित कर्म है।
9. सगुण ब्रह्मविषयक मानस व्यापार रूप शाण्डिल्य विद्यादि उपासन कर्म हैं।
10. नित्यकर्मो का मुख्य फल बुद्धि शुद्धि है।
11. नित्यादि कर्मों का गौण फल पितृलोक की प्राप्ति है।

उत्तर - 17.4

1. ब्रह्म ही नित्य वस्तु है उसके अतिरिक्त सब कुछ अनित्य है यह विवेचन ही नित्यानित्यवस्तुविवेक है।

2. इहलौकिक आभूषण, चन्दन, स्त्री, आदि विषय भोगों के अनित्यत्व के समान पारलौकिक अमृतादि विषयभोगों की अनित्यता द्वारा उनसे पूर्णतया वैराग्य का भाव इहामुत्रफलभोगविराग है।
3. स्वर्गसुख भी अनित्य है इस विषय में ''तद्यथेह कर्मनितो लोक क्षीयते एवम् एव अमुत्र पुण्यजितो लोकः क्षीयते यह श्रुति प्रमाणभूत है।
4. श्रवणादि व्यतिरिक्त विषयों से मन का निग्रह ही शम है।
5. बाह्य इन्द्रियों का तद्व्यतिरिक्त विषयों से निवर्तन दम है।
6. निवर्तित किए गए अतीन्द्रिय मन तथा बहिरिन्द्रियों का उनसे व्यतिरिक्त विषयों से उपरमण उपरति है अथवा विहित कर्मो का विधि द्वारा परित्याग ही उपरति है।
7. सर्दी गर्मी आदि द्वन्द्व को सहन करना ही तितिक्षा है।
8. निगृहीत मन का श्रवणादि में तथा तदनुगुण विषय में समाधि समाधान है।
9. गुरू द्वारा उपदिष्ट वेदान्त वाक्यों में विश्वास श्रद्धा है।

उत्तर - 17.5

1. मोक्ष विषयक इच्छा ही मुमुक्षुत्व है।
2. विवेकचूड़ामणि के कर्ता शंकराचार्य हैं।
3. शमादि के अभाव में मोक्ष विषयक इच्छा नहीं होती है।

उत्तर - 17.6

1. जीव तथा ब्रह्म का ऐक्य ही वेदान्त शास्त्र का विषय है।
2. जीव तथा ब्रह्म के ऐक्य में ही वेदान्तों का तात्पर्य है।
3. जीव ब्रह्मैक्यम् यहाँ ऐक्य शब्द का अर्थ अभेद है।
4. शास्त्र के साथ विषय का बोध्य बोधक भाव सम्बन्ध है।
5. यहाँ ग्रन्थ बोध का जनक बोधक है।
6. जीव तथा ब्रह्म के ऐक्य प्रमेय मत ज्ञान की निवृत्ति तथा स्वस्वरूपानन्द की प्राप्ति प्रयोजन है।
7. जीव तथा ब्रह्म के ऐक्यगत ज्ञान की निवृत्ति होती है तभी स्वस्वरूपानन्द की प्राप्ति होती है।

।।सत्रहवाँ पाठ समाप्त।।